ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292 PP. NO.- 373-376
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
ISSN NO.- 2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.- 2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

विश्वविद्यालय शिक्षकों के बदले आयाम

धन्नजय कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर0पी0एस0 कॉलेज, हरनौत–नालंदा (बिहार), भारत

Received- 21.06.2020, Revised- 25.06.2020, Accepted - 27.06.2020 E-mail: - dr.ramnyadav@gmail.com

सारांश : ***भारत में शिक्षा पद्धति में जैसे जैसे परिवर्तन होते गए शिक्षक की भूमिका भी बदलती गई। शिक्षा ने भारत में अपना स्वरूप जड़वादी शिक्षा का ले लिया और उसके फलस्वरूप समसामयिक जीवन के बदलते संदर्भो से उसके रिश्ते कमजोर होते चले गए । इसी के साथ शिक्षा से जुड़े शिक्षकों के आयाम भी बदलते चले गए। शिक्षकों ने शिक्षा पद्धति के साथ हर समय अपने आप की भूमिकाओं को बदला है। वर्तमान शिक्षा नीति में शिक्षा से जुड़े शिक्षक शिक्षा को उद्योग मानकर अपने की पूर्ति में संलग्न है। विश्वविद्यालय और महाविद्यालय में शिक्षा राजनीति और आपसी संघर्ष के दूषित पर्यावरण ने उच्च शिक्षा के शैक्षणिक पर्यावरण को जहाँ प्रभावित किया है वहीं उस पर्यावरण में रहने वाले अपने आप में घटन महसूस कर रहे हैं। शिक्षा का ऐतिहासिक विकास और शिक्षक की भूमिका हमेशा बदलती रही है। उसका समसामयिक जीवन के बदलते हुए संदर्भो से बहुत कम सरोकार है। वह आज या आने वाले कल की चुनौतियाँ स्वीकार नहीं करती बल्कि अपने ढाँचे को सुरक्षित रखने में ऐसी तल्लीन है कि उसके पास अपने ही वृहत्तर प्रयोजनों पर विचार करने का समय नहीं है। यह जिस रोग से ग्रस्त है उसकी छानबीन अनेक आयोगों, समितियों, कार्य समूहों और अध्ययन दलों ने की है और उन्होंने कई भारी भरकम प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं, जिनमें सुधार के लिए उपाय और प्रगति के लिए रामबाण औषधियों का संकेत दिया है। परंतु इस समस्त श्रम में शिक्षा प्रणाली में उथल–पुथल बढ़ती जाती है और आज वह भयानक रूप धारण कर चुकी है। यदि आज किसी विश्वविद्यालय में वर्ष भर में अस्सी या नब्बे दिन शान्तिपूर्वक पढ़ाई हो जाएं तो उसे भाग्यशाली समझना चाहिए।***

कुंजीभूत शब्द– जड़वादी शिक्षा, समसामयिक जीवन, कमजोर, आयाम, भूमिकाओं, वर्तमान शिक्षा, नीति ।

उच्च शिक्षा प्राप्ति का अधिकार जैसी कोई चीज नहीं है, यह तो सम्बद्ध एक ऐसा विशेषाधिकार है जिसे कठोर उपलब्धि सम्बद्ध मानदण्ड पर पूरा उतरने पर ही अर्जित किया जा सकता है। इस तथ्य को स्वीकार। कर लेना सामन्यतः हमारे देश और विशेषतः हमारी शिक्षा प्रणाली के लिए हितकर होगा। समस्या जटिल है। कभी–कभी यह संकेत दिया जाता है कि चयनित पद्धति में शारीरिक कौशल को पर्याप्त महत्व देकर अपवाद क्षेत्र का विस्तार किया जा सकता है, लेकिन क्या बहुत समय तक चल। सकेगा? यह किसी बढई या लोहार के पुत्र को तो लाभ पहुंचा सकता है, लेकिन अकशल खेतिहर मजदरों, मेहतरों और पत्थर फोड़ने वालों की संतान का क्या होगा? उच्चशिक्षा के लिए उच्चकोटि का प्रबन्धन आवश्यक होगा। लेकिन इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है कि हम यह कर सकेंगे, बल्कि इसके विपरीत भारत की स्वतन्त्रता के बाद के दशकों में उच्च शिक्षा संस्थाओं में नेतत्व का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। राज्य सरकारों का विश्वविद्यालयों के प्रति जो रवैया रहा है, वह भी स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। उन्होंने अपना प्रत्यक्ष और परोक्ष नियंत्रण बनाए रखने में सयम से काम नहीं लिया। आर्थिक अनुदान देने में उन्होंने ऐसा कृपणता दर्शायी है कि विश्वविद्यालयों का जीवित रहना कष्टकर अनुभव बन गया है।

हमारे विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में असंतोष इतना व्यापक है और हिंसा के ऐसे विस्फोट होते रहते हैं कि हम उन संकटों की आर ध्यान ही नहीं दे पाते, जो उच्च शिक्षा की आत्मा का हनन कर रहे हैं। यदि हम शिक्षा के लक्ष्यों के संबंध में राष्ट्रीय सहमति विकसित कर सकें। और उनकी और अग्रसर होने के लिए आवश्यक शक्ति जुटा लें, तो हम विश्वास के संकट और सर्वत्र फैल रही विघटनकारी दोषदर्शिता का सामना करने में सफल हो सकेंगे। अभी हमारे देश में प्रतिभा का विशाल भडार मौजूद है– ऐसे उत्सुक विद्यार्थी तथा अध्यापक है, जिनमें कल्पनाशीलता भी है और प्रतिबद्धता की भावना भी, किन्तु जिन्हें अब तक कोई अवसर दिया ही नहीं गया। अब समय आ गया है कि हम यह जानने की कोशिश करें कि वे हमारी विश्वविद्यालयीय प्रणाली से क्यों मुंह मोड़ रहे हैं। शैक्षिक क्रियाकलाप इतने नीरस और निरुद्देश्य है कि जिज्ञासु विद्यार्थी के हाथ, जो कि उस तथाकथित ज्ञान से कुछ अधिक प्राप्त करना

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

चाहता है और उसे टुकड़ों में तथा अनियमित ढंग से प्रदान किया जाता है, निराशा ही लगती है। गत्यात्मक अध्यापकों को या तो सामान्यता के प्रचलित स्तरों पर संतोष करना सीखना पड़ता है या उन्हें। अपने जीवन को दो भागों में बाँट लेना पड़ता है, एक तो जीविका अर्जन के लिए कम से कम नैमित्तिक प्रकार के अध्ययन और अध्यापन, में से एक के भी अनुकूल नहीं बना सकतें, उन्हें या तो कहीं और चले जाना चाहिए तो फिर कट्ता भरे जीवन से संतोष कर लेना चाहिए कुठा की इन संरचनाआ को गिराने के लिए हमें प्रयोजन रूपी सशक्त इंजनों की आवश्यकता है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि हम अप्रचलन तथा प्रांसगिकता के संकटों का मुकाबला करें।

यह एक घिसी– पिटी बात है कि ज्ञान अब पाँच वर्षों में अपने को दुगुना कर लेता है और इसे शिक्षा से संबंधित हरेक सभा सम्मेलन में सामान्य रूप से दोहराया जाता है। तेजी से गिरते हुए स्तर के लिए। आँसू बहाना भी एक रूढि बन गई है। हम भला बिना कुछ किए स्तर के गिरने पर यों कब तक विलाप करते रहेंगे? विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विभिन्न विषयों की समीक्षा समितियों ने जो कुछ वर्ष पर्व गठित हई थी, कुछ उपयोगी कार्य किया। उनकी रिपोर्टो में जिनका स्तर भिन्न कोटि का था– पाठ्यक्रमों की न्यूनताओं की और संकेत किया गया और उनके आधुनिकीकरण के लिए सुझाव दिए गए, किन्तु ये सब एक विशिष्ट वर्ग के ही लिए बनाई गई योजनाएँ थी, जिनमें अल्पाधिकार प्राप्त विश्वविद्यालयों और कालेजों के संबंध में कोई विचार नहीं किया गया था। जितनी सूक्ष्म जाँच होनी चाहिए थी। वह नहीं हुई और शायद इसी क्षेत्र में यह संकट सबसे अधिक गहरा है। प्रो. दौलतसिंह कोठारी ने कहा है कि विज्ञानाश्रित विश्व में किसी भी देश की समस्त विकासात्मक प्रक्रिया, उसके कल्याण, प्रगति और सुरक्षा के लिए शिक्षा और अनसंधान का भारी महत्व होता है। क्या हमारी विश्वविद्यालयीय प्रणाली विज्ञानाश्रित समकालीन विश्व को या उन सशक्त शक्तियों को पर्याप्त रूप से समझने में सहायक है जो मानव नियति का निर्माण करती है? आज यह समझना आवश्यक है कि संसार कितनी तेजी से बदल रहा है, किन्तु विश्वविद्यालयीन प्रणाली इस प्रकार की समझ विकसित करने में कोई सक्रिय सहयोग नहीं देती है। भारत में अनेक विश्वविद्यालय अपने कर्तव्य की पुरानी संकल्पनाओं से बंधें रहकर ही काम करते आ रहे हैं। यह स्थिति इस कारण से और बिगड़ गई है कि हमारे विश्वविद्यालयों के अधिकांश लोग उच्च प्रतिष्ठायुक्त विदेशी आदर्शों पर अपनी दृष्टि लगाए रहते हैं।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने पिछले दशकों में पर्याप्त वित्तदान किया है और अनेक विश्वविद्यालयों में विकास कार्य जारी रखने में सहायता दी है। इस संबंध में उसने कुछ साहसपूर्ण कार्य किए हैं। उसी ने भारत में उच्च शिक्षा से संबंधित कतिपय प्रमुख मुद्दों पर वार्ता को चलाए रखा है। कुल मिलाकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना हितकर सिद्ध हुई है, किन्तु यह विचार भी बढ़ रहा है कि इस संगठन ने अपनी आरंभिक गतिशीलता खो दी है और वह अनिर्णय का शिकार हो गया है। उसके बहुत से प्रस्तावित नवाचार शुरू ही नहीं। हो पाए और विश्वविद्यालयों को अपनी सिफारिशें न मानने की खुली छूट देकर वह उस स्तर को बनाए रखने की दिशा में भी उतना योगदान नहीं कर सका है, जिसकी उससे अपेक्षा थी।

हमारी सर्वाधिक स्पष्ट असफलताएँ शैक्षिक नवाचारों के क्षेत्र में है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों ने पूर्व स्थापित पद्धति में साहसपूर्ण परिवर्तन किए और उनसे यह आशा थी कि वे रूढ़ पद्धतियों पर चल रहे विश्वविद्यालयों के लिए दिशा निर्धारक सिद्ध होंगे, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। वे संस्थान भी संकटग्रस्त हैं और ऐसा लगता है कि वही पुरानी परिपाटी अपनाने की दिशा में अग्रसर हैं, जो अपनी प्रतिष्ठा खो चुकी है, स्वायत्त कालेजों के बारे में काफी चर्चा हो चुकी है लेकिन, उन पर अमल नाममात्र को ही हुआ है। अब तक बहुत थोड़े कालेजों को यह दर्जा मिला है। पाठ्यचर्या में नम्यता की आवश्यकता पर बार–बार बल दिया गया है, लेकिन हमारे विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम एक विशिष्ट पद्धति के बंदी बने हुए हैं और उनमें केवल सीमित और रूढ़िगत विकल्प ही संभव है। सेमेस्टर पद्धति जिसे हमारी शिक्षा प्रणाली की सभी बुराइयों को दूर करने के लिए रामबाण समझा जाता था, सर्वथा निष्फल सिद्ध हुई है। जब तक हमारे पाठ्यक्रमों के स्वरूप में आमूल परिवर्तन नहीं हो जाता और मूल्यांकन पद्धति में भी आवश्यक परिवर्तन नहीं हो जाते तब तक उसका जो हश्र हुआ, वही होना भी था। उच्च शिक्षा को यदि आगे बढ़ना है तो उसकी व्यवस्था सम्बन्धी कार्यनीति पर हमें फिर से विचार करना होगा। आक्रामक विद्यार्थी गिरोहों को विश्वविद्यालयों में कब तक उपद्रव करने दिया जाएगा? कब तक हम उग्र अध्यापक वर्ग का आतंक सहेंगे? कब तक हम विश्वविद्यालय के प्रबन्धकार्मिकों को अग्निशमन उपस्कर के रूप में काम करने देंगे? समय आ गया है कि हम उन संघर्षों और आन्तरिक विरोधों के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें, जिन्होंने हमारे विश्वविद्यालयों की व्यवस्था को अस्त–व्यस्त कर दिया है। शिक्षा को जिरो समस्या के हल का साधन होना चाहिए था, समस्या उत्पन्न करने वाला यंत्र बना दिया गया है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

जिस प्रणाली को राष्ट्रीय विकास में सहायक होना चाहिए था वह दुष्क्रियात्मक होकर विकास अवरोधक बन गई है। मैं, यहाँ एक निराशापूर्ण भविष्यवाणी करूँ कि यदि हम अब भी उच्च शिक्षा प्रणाली की अनेक बराइयों की और से आँखें मूंदे रहे तो यह बहुत शीघ्र एक घोर राष्ट्रीय विपत्ति का कारण बन जाएगी। ।

अन्त में मूल्यों और प्रतिबद्धता जैसे संवेदनशील विषयों पर भी सामान्य सी चर्चा कर ली जाएँ, मैं जानता हूँ कि इन शब्दों के उल्लेख मात्र से शैक्षिक स्वतन्त्रता और स्वायत्तता के अनेक स्वयंभू अभिरक्षकों का रक्तचाप बढ़ जाता है, बल्कि कुछ पर तो मिरगी के दौरे पड़ जाते हैं. लेकिन यह समझ में यह नहीं आता कि शिक्षा पूर्णतः मूल्यविहीन या सभी प्रकार की सामाजिक प्रतिबद्धता से शून्य कैसे हो सकती है? शिक्षा की योजना में विभिन्न स्तरों पर मूल्य सम्बन्धी विकल्प निहित होते हैं और यदि उसे हर प्रकार की प्रतिबद्धता से रहित शिक्षा अमानवीय शिक्षा है। वहीं शिक्षा जिसके विरुद्ध युवा शक्ति ने अपनी बन्दूकें तान ली है। भारत में उच्च शिक्षा को लोकतन्त्र, समता, सामाजिक न्याय और धर्मनिरपेक्षता सम्बन्धी मूल्यों को अपनाना और उन्हें आगे बढ़ाना होगा।

अन्त में शिक्षा के कुछ प्रमुख कार्यों को एक बार फिर दोहरा लें। पहला, हमें उच्च शिक्षा के उद्देश्यों को पुनः परिभाषित करना होगा। हम उसे प्रशिक्षित क्षमता और समस्या समाधान की प्रखर योग्यता का साधन कैसे बन सकते हैं? दूसरा, हमें उच्च शिक्षा प्रणाली में फिर से विश्वास जगाना होगा। हमें क्या करना चाहिए, जिससे इसमें भाग लेने वालों में। इसके प्रति सहज आस्था उत्पन्न हो सके? तीसरा, भारतीय शिक्षा के पुरानेपन पर किस तरह प्रहार किया जाए? हम यह सुनिश्चित करने के लिए क्या कर सकते हैं कि शिक्षा ज्ञान के विस्तारित सीमांतों से अवगत रहे? चौथा, इसे किस तरह जीवन के बदलते संदर्भो और हमारी राष्ट्रीय आवश्यकताओं के लिए प्रासंगिक बनाया जाए? हम उच्च प्रतिष्ठा सम्पन्न उन पाश्चात्य आदर्शों के कैसे पिंड छुडाएँ जो हमारी वास्तविकताआ का अनकल नहीं है। हम अपने विद्यार्थियों को विज्ञान आधारित और तेजी स बदलते हुए आने वाले कल के समाज की अनुभूति कैसे कराएं? और, हम अपनी नयी पीढ़ी को वर्तमान भारतीय जीवन को दुःखद वास्तविकताओं से कैसे परिचित कराएँ तथा उन्हें एक स्वावलम्बी और समृद्ध राष्ट्र के निर्माण के अभियान में कैसे शामिल करें?, पाँचवाँ, हमें उन लोगों की बढ़ती संख्या के संबंध में कुछ कड़े निर्णय लेने हैं जो न तो उच्च शिक्षा का लाभ उठाने के लिए परिश्रम करने को तैयार है, और न ही उसके योग्य हैं। उन्हें उपयोगी व्यवसायों की और प्रवृत्त करने और नियोजन प्रक्रिया के लिए उपयोगी बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए? साथ ही हमें इस पर भी विचार करना है कि शिक्षा के क्षेत्र तथा वृहत–वृहत समाज में यह सुनिश्चित करने के लिए क्या करना चाहिए कि भर्ती के समय किए जाने वाले चयन के सामाजिक परिणाम न हो। छठाँ, हमें उच्च शिक्षा के प्रबन्धन के लिए एक कारगर नीति अपनानी चाहिएँ और सातवॉ, शिक्षा प्रणाली में ही मूल्यवत्ता और प्रतिबद्धता लाने के लिए भी कुछ करना चाहिए तॉकि वह में अनास्था, निरुददेश्यता और निष्क्रियता के गर्त में न धकेल दे।।

भारतीय शिक्षा प्रणाली की न्यूनताएँ एक ऐसा विषय है, जिस पर लम्बी और प्रायः अन्तहीन बहसें हो चुकी है। ब्रिटिश शासनके दौरान इसको लेकर भारी वाद–विवाद हुआ था और आजादी के बाद के दशकों में भी इस पर होने वाले प्रहारों में कमी नहीं आई। इस अवधि में इस प्रणाली में जिसकी काफी निन्दा हो चुकी है, परिणाम की दृष्टि से जो वृद्धि हुई है, वह विस्मयकारी है।

उच्चशिक्षा प्रणाली की कमजोरियों को पता बहुत पहले लगाया जा चुका है। इस विषय पर चर्चा भी काफी हो चुकी है। यह एक विदेशी पौधा है, जो भारत की सांस्कृतिक धरती में फल–फूल नहीं सका। मूल रूप से यह उपनिवेशवाद बनाए रखने का एक साधन था जो साम्राज्यवाद के हित साधन के लिए अपनाया गया था और जो समकालीन भारत के लिए आज एक कालदोश बन गया है।

शिक्षा राष्ट्रीय जीवन का ऐसा क्षेत्र है जो बहुत सजीव और संवेदनशील है और उसे जन आलोचना से न तो बचाया जा सकता है, जो न ही बचाया जाना चाहिएँ। जहाँ तक भारतीय शिक्षा का प्रश्न है इस आलोचना के लाभ नगण्य ही ही रहे हैं। कुछ समस्या क्षेत्रों की पहचान की जा चुकी है और उनके लिए उत्तरदायी कारकों का पता भी लगाया जा चका है, परंतु निराकण के लिए जो काम आरम्भ किए गए उनका मार्ग बड़ा चक्करदार और दुर्गम था। उनमें से अधिकांश तो पल्लवित हुए, बिना ही मुरझा गए और कुछ नष्ट हो गएँ स्कूलों, विश्वविद्यालयों और समुदायों के बीच पारम्परिक लामपत संपर्क स्थापित करने पर आजकल बल दिया जा रहा है और उन प्रलेखों में, जिनमें नए चिन्तन की छाया है, विस्तार कार्य पर भी बल दिया गया है। यदि इस कार्यक्रम को आर्थिक समर्थन मिल जाए तो जैसा कि होता आया है इसे ऊपरी उत्साह के साथ और बिना सोचे–समझें स्वीकार कर लिया जाएगा। न तो शिक्षा सुधार के लिए ठोस विचारों की कमी है और न ही शैक्षिक गुणवत्ता को प्रोत्साहन देने के लिए कल्पना प्रवीण योजनाओं की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बाद

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

भी उसने राजनीतिक अनिश्चितता और भाँत–नीतियों के कुछ प्रमुख पक्षों पर साहसिक रुख अपना कर अपनी शक्ति का परिचय दिया है। यह और बात है कि पर्यावरण सम्बन्धी जोर दबाव के कारण अधिक कुछ हो नहीं पाया।

इस प्रकार की विकट स्थिति उच्चशिक्षा के प्रबन्धन के लिए अभूतपूर्व चुनौतियाँ खड़ी कर रही है। जिन क्षेत्रों में समस्या सबसे अधिक जटिल है, वे हैंः शैक्षिक लक्ष्यों की कार्यप्रधान तथा समयबद्ध पुनः परिभाषा, शिक्षा प्रणाली को दतरशाही से जटिल बनाए बिना दायित्व भावना जगाना और उसे लागू करना, ताकि शैक्षिक स्वतन्त्रता और पहल करने की शक्ति का हनन न हो, प्रतिफल मान्यता प्रणाली का इस प्रकार पुनर्गठन करना, जिससे गुणवत्ता पर बल दिया जा सके तथा राजनीतिक और षड्यन्त्रों के विरुद्ध निवारक उपायों की व्यवस्था हो सके, झगडे निबटाने के न्यायसम्मत उपाय तलाश करना, प्रत्याशी को प्रारंभिक और उपचारात्मक शिक्षा तथा श्रेणीबद्ध कर्मशालाओं और शिल्प केंद्रों के संगठन आदि के रूप में ऐसी सामान्य किन्तु अनिवार्य योजनाओं को बढ़ावा और समर्थन देना जिनमें विद्यार्थियों के उच्चतर तथा निम्नतर दस प्रतिशत भाग पर विशेष ध्यान दिया जाए और ऐसे सशक्त आन्दोलन को समर्थन प्रदान करना जो। विश्वविद्यालयीन प्रणाली को बाहरी हस्तक्षेप और भीतरी तोड़फोड़ का सामना करने में समर्थ बनाएँ, क्योंकि ये दोनों चीजें उस उद्देश्य को ही निष्फल करती है, जिनके लिए उच्च शिक्षा के केंद्र स्थापित किए जाते है ।

यह कार्य वास्तव में बड़ा विशाल और कठिन है। राष्ट्रीय हित और भविष्य की अनिवार्यताएँ, यह माँग करती है कि शिक्षा के मूल मुद्दों पर राष्ट्रीय सहमति बनाई जाएँ सुधारात्मक कार्रवाई की शरुआत उच्चनीति एतर। तथा वैयक्तिक संस्थाओं के स्तर पर एक साथ की जानी चाहिए। यदि इन। स्तरों पर इसमें विलंब या संकोच किया गया तो समस्या, जो पहले ही से उलझी हुई है और भी जटिल हो जाएगी और उसका समाधान अनिश्चित काल तक के लिए कठिन होता जाएगा।

भारतीय संस्कृति में गहरे पेठे हुए कुछ शाश्वत मूल्य हैं। हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इन मूल्यों का हारा स्पष्ट दिखाई देता है। सत्य, अहिंसा, सदाचार, प्रेम और शांन्ति सदा ही भारतीय संस्कृति का आधार रहे हैं। जिस शिक्षा में ये सदगुण प्रभावी नहीं होंगे, वह सब कुछ हो सकती है। भारतीय शिक्षा इसी से जुड़ी ''वसुधैव कुटुम्बकम' वाली नागरिकता भी है। शिक्षा को ऐसा रूप देना चाहिए कि भारतीय नागरिकता, व्यर्थवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रवादी मूल्यों को अंकुरित कर सकें और इससे भी अधिक अन्तर्राष्ट्रीय नागरिकता का स्वप्न भी देख सकें।

आधुनिक भारत की कुछ मूल्यगत विशेषता राष्ट्रीय मूल्यों में समाहित है। संविधान में जनतन्त्र, समानता और धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों का उल्लेख है। संविधान में निहित इन भावनाओं को पनपाने में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था सफल नहीं रही है। उच्च शिक्षा से उपाधिधारी युवकों को रोजगार नहीं मिल पा रहा है और देश में बेरोजगारी बढ़ी है। वस्तुतः ज्ञान, स्वास्थ्य, श्रम, नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, वैवाहिक आदि मूल्यों की शिक्षा जीवन के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार करना होगी, तभी 21वीं सदी में उच्च शिक्षा और राष्ट्र का भविष्य उज्जवल होगा।

उच्च शिक्षा में स्वतन्त्रता के बाद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, मानव संसाधन मंत्रालय और केंद्र–प्रदेश शासन ने शिक्षा प्रणाली में समय–समय पर अनेक परिवर्तन किए हैं और यह क्रम जारी है। अरबों–खरबों रुपए की राशि खर्च करने, अनेक आयोगों, समितियों के प्रतिवेदन के सुझाव एवं अनेक प्रयोगों ने उच्च शिक्षा में वे सार्थक मूल्य स्थापित नहीं किए जो किए जाने चाहिए थे। उच्च शिक्षा से जुड़े मेधावी शिक्षक अच्छे अवसरों की तलाश में विदेशों की और पलायन कर गए तथा ये क्रम आज भी जारी है। ऐसे अनेक परिवर्तनों के दौर से उच्च शिक्षा प्रणाली एक ऐसे संक्रमणकाल में यात्रा कर रही है, जिसने शिक्षकों के मूल्यों को प्रभावित किया है। वहीं शिक्षा पद्धति में भी किए गए परिवर्तन सार्थक दिशा नहीं ले पाए हैं। इन्हीं सब प्रश्नों के उत्तरों को जानने का प्रयास इस शोध का आधार है और उसकी पृष्ठभूमि है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मैक्स वेबर : मेथड़ोलॉजी ऑफ द सोशल साइंसेस
2. आर०के० मुखर्जी : द सोशल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्युज, 1979.
3. जॉन ई ओवेन : द रोल ऑफ वैल्यूएशन इन सोशियोलॉजी इन द फ्रोन्टीचरस ऑफ सोशल साईंस ।
4. जेक्ब ब्रोनोस्की : द वैल्यूज ऑफ साइंस इन अब्राहम एच० मास्लो (इडी.) न्यू नौलेज इन हुमन वैल्युज, 1954.

*****